Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

भ्रष्टाचार में डूबी भारत की राजनीति

डॉ० शक्ति जायसवाल[1]

भारत एवं अन्य उपनिवेशों में ब्रिटेन के साम्राज्यवादी शासन के स्वर्णकाल में लार्ड एक्टन ने टिप्पणी की थी, 'सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूरी तरह से भ्रष्ट कर देती है'।[1] भारत जैसे दुनिया के विशालतम लोकतांत्रिक देश में राजनीतिक, कार्यकारी एवं न्यायिक सत्ता कुर्सी पर बैठे लोगों को प्रचुर शक्तियां प्रदान करती है। भ्रष्टाचार का जन्म कहीं न कहीं सत्ता लोलुप्ता का ही परिणाम होता है। सत्ता की भूख जब हदें पार करती है तो वह अकूत ताकत, बेशुमार सम्पत्ति तथा वह सब कुछ जिसे हमारी परम्परा त्याज्य समझती थी, को समेट लेना चाहती है। भारत में भ्रष्टाचार का प्रसार सरकारी महकमे में निर्वाचित राजनीतिज्ञों से लेकर उच्च नौकरशाही और निम्न नौकरशाही के विभिन्न स्तरों पर लंबवत रूप में अर्थात ऊपर से नीचे तक फैला है।[2] इसके अलावा न्यायपालिका के कुछ हिस्सों, मीडिया के कुछ हिस्सों, कुछ स्वतंत्र पेशों समेत अन्य सार्वजनिक संस्थानों में भ्रष्टाचार क्षैतिजवत् ढंग से अर्थात अन्दर ही अन्दर पसरा हुआ है। इस प्रकार देश के सभी क्षेत्रों में लंबवत एवं क्षैतिज रूप से फैला भ्रश्टाचार ही वह प्राथमिक कारण है जिसकी वजह से भ्रश्टाचार की रोकथाम एवं उस पर अंकुश लगाना कठिन हो गया है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आरंभिक वर्शों में राजनीतिक नेताओं के बीच शायद ही कोई भ्रष्टाचार था। कुछ मामलों में, जब कतिपय औद्योगिक घरानों के प्रति विशेष तरफदारी करने का संदेह होता था, तो संबद्ध मंत्री पद में बने रहने के बजाय इस्तीफा दे देते थे, भले ही व्यक्तिगत भ्रष्टाचार का कोई स्पष्ट प्रमाण मौजूद न हो (उदाहरण के लिए 1957 का कुख्यात मूंदडा मामला जिसमें तत्कालीन वित्त मंत्री टी.टी. कृष्णामचारी लपेटे में आये थे)। कुछ दूसरे लोकतांत्रिक देशों के विपरीत भारत में लोकतंत्र का आगमन औपनिवेशिक शासन के खिलाफ दशकों तक किए गए राष्ट्रवादी संघर्ष का परिणाम था। राष्ट्रवादी संघर्ष की अगुवाई उन राजनीतिक नेताओं ने की थी, जिन्होनें व्यक्तिगत बलिदानों की झड़ी लगा दी थी और देश के लिए 'सादा जीवन और उच्च विचार' का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया था। राजनीतिक सत्ता में बैठे लोगों से न केवल यह उम्मीद की जाती थी कि वे भ्रष्टाचार से बचे रहेगें बल्कि व्यापक तौर पर समाज के आगे पाक–साफ बने रहेगें।

[1] असि0 प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, रा0स्व0ग्रा0उद्योग स्नातकोत्तर कालेज, पुखरायाँ, कानपुर देहात

हालांकि धीरे–धीरे अकल्पनीय ढंग से स्थिति बदल गई और अब भारत को दुनिया के सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में से एक माना जाता है। ट्रांसपरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी 'करप्शन परसेप्शन इंडेक्स–2010' के अनुसार 178 देशों की सूची में भारत का स्थान 87वां था। एशिया में चीन, भूटान, मॉरिशस, सऊदी अरब आदि की स्थिति भारत से बेहतर है। यह एक दयनीय स्थिति को दर्शाता है कि भ्रष्टाचार नियंत्रण के संदर्भ में भारत का दर्जा चीन एवं सऊदी अरब जैसे गैर लोकतांत्रिक देशों से भी खराब है।[3]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में गरीबी उन्मूलन हेतु राष्ट्रीय संसाधनों के आवंटन पर केन्द्रीयकृत नियंत्रण वाली विकास रणनीति अपनायी गई थी किन्तु इस रणनीति का वास्तविक परिणाम उम्मीद से कोसों दूर था।[4] इस रणनीति ने जिस सार्वजनिक निवेश को बढ़ावा दिया उसका राजनेताओं एवं सरकारी अधिकारियों ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति हेतु दुरुपयोग किया तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया। 1991 के बाद उदारीकरण की सुधार प्रक्रिया ने जोर पकड़ा किन्तु सुधारों के बावजूद सरकार में विभिन्न स्तरों पर प्रशासनिक एवं प्रक्रियागत संघर्ष अब भी फल–फूल रहे हैं। सार्वजनिक उपक्रमों के संसाधनों पर नियंत्रण, बड़े निजी क्षेत्र के उद्यमों की गतिविधियों को विनियमित करने के अधिकार, कृषि एवं औद्योगिक वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करने का अधिकार तथा सब्सिडी प्रदान करने एवं वित्तीय घाटे का बोझ उठाने के अपने अधिकार की वजह से राजनेतागण अब भी चाँदी काट रहे हैं। दुर्लभ संसाधनों के आवंटन का अधिकार सत्ता में बैठे नेताओं के हाथ में होता है। ये नेता इस मामले में अपनी पार्टी के हितों तथा ऐसे अन्य लोगों के हितों का ख्याल रखते हैं जो चुनावों के दौरान तथा चुनावों के बाद भी उनकी सहायता करने की स्थिति में होते हैं। भूमि तथा अन्य सार्वजनिक संसाधन दुर्लभ होते हैं और आपस में प्रतिस्पर्धारत निजी हितों के बीच इनका बंटवारा व्यापक रूप से सरकार के हाथ में होता है। यह स्थिति प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर राजनीतिक एवं नौकरशाही भ्रष्टाचार की और अधिक गुंजाइश उपलब्ध कराती है।

हाल के वर्षों में सार्वजनिक निवेश एवं आवंटन से संबंधित अनेक बड़े घोटाले उजागर हुए हैं, जो राजनीतिक भ्रष्टाचार को दर्शाते हैं। इसी संदर्भ में 2008 में हुए टूजी स्पेक्ट्रम आवंटन का घोटाला काफी चर्चित रहा है। यह घोटाला एक ओर जहां भ्रष्ट राजनेताओं एवं उद्योगपतियों के सांठगांठ का उदाहरण है वहीं इस बात का भी उदाहरण है कि हमारे तंत्र में भ्रष्टाचार को रोकने के जो उपकरण हैं वो नाकाम हो चुके हैं। टेलीकाम मंत्रालय ने 2008 में निजी क्षेत्र की टेलीकॉम कंपनियों को 'पहले आओ पहले पाओ' की नीति के आधार पर टूजी स्पेक्ट्रम का आवंटन औने–पौने दाम पर किया था। नियंत्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट के मुताबिक इस घोटाले से सरकार को 1.76 लाख करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है। सी ए जी का कहना है कि स्पेक्ट्रम आवंटन में कई नियमों एवं निर्देशों की अनदेखी की गई है। यहां तक कि कुछ कंपनियों को फायदा पहुंचाने के लिए पैसे की लेन–देन का भी सहारा लिया गया। इस घोटाले में देश के महत्वपूर्ण वीआईपी फंसे थे, जिसमें पूर्व दूरसंचार मंत्री ए. राजा, पूर्व दूरसंचार सचिव सिद्धार्थ बेहुरा, करुणानिधि

की सांसद बेटी कनिमोझी, स्वान टेलीकॉम के प्रमोटर शाहिद बलवा एवं विनोद गोयनका जैसी हस्ती शामिल थीं।[5]

इसके अतिरिक्त राजनीतिक भ्रश्टाचार से संबद्ध दूसरा महत्वपूर्ण घोटाला 2010 में राष्ट्रमंडल खेल के आयोजन से जुड़ा रहा है। राश्ट्रमंडल खेल आयोजन की तैयारियां जब से शुरु हुई तब से आयोजन होने तक आयोजन का बजट लगभग 25 गुना बढ़ाया जा चुका था। शुरु में कहा गया था कि इस आयोजन पर 665 करोड़ रुपये खर्च होंगे। इसके बाद संसद में बताया गया कि यह राशि 11994 करोड़ होगी तथा अंत तक प्रस्तुत आंकलन अनुसार लगभग 16000 करोड़ रुपये खर्च की राशि बताई गई। पूर्व खेलमंत्री मणिशंकर अय्यर ने इस आयोजन को भ्रष्टाचार एवं लूट का प्रतीक बताया। सीवीसी ने धमाका कर सबको चौंका दिया कि खेल परियोजनाओं से जुड़े ठेकों में जाली ढंग से गुणवत्तापूर्ण सर्टिफिकेट बांटे गए थे। सीबीआई निदेशक अनुसार 2477 करोड़ रुपये की निर्माण योजनाओं के ठेके देने एवं कंप्लीशन रिपोर्ट में भारी घोटाला हुआ है। समस्यात्मक प्रश्न यह था कि इतने बड़े पैमाने पर ठेके के आवंटन पर राजनेताओं द्वारा पारदर्शिता क्यों नहीं बरती गई?

इसी तरह एस बैंड स्पेक्ट्रम के आवंटन में भी राजनीतिक भ्रष्टाचार का मुद्दा ज्वलंत रहा है। इसरो की व्यवसायिक शाखा एंट्रिक्स ने निजी कंपनी देवास मल्टीमीडिया को 70 मेगाहर्टस एस बैण्ड स्पेक्ट्रम मात्र 1 हजार करोड़ रुपये की राशि पर दे दिए जबकि उसकी वास्तविक कीमत का अनुमान 2 लाख करोड़ रुपये आंका गया था।[6] इसके अलावा कारगिल खरीद घोटाला, आदर्श सोसाइटी घोटाला आदि सरकारी तंत्र की अनियमितताओं के उदाहरण रहे हैं।

वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र में विगत दस वर्षों से गठबंधन की राजनीति स्थायी रूप ले चुकी है, जिसमें पांच साल भी नेताओं को बड़े लगने लगे हैं तथा उन्होनें दूर की सोचना बंद कर दिया है। ऐसी स्थिति में तमाम सत्तानायक अपना धर्म–ईमान बेचकर किसी प्रॉपर्टी डीलर की तरह व्यवहार करने लगते हैं। उनके लिए जमीन से लेकर लाइसेंस तक सब कुछ जल्दी–जल्दी बेच देना ही जिंदगी का मकसद बन जाता है। यह एक दुःखद सच है कि मोल–भाव की इस राजनीति ने पिछले दो दशकों में निर्लज्जता की सीमाएं पार कर दी हैं। देश के ईमानदार एवं काबिल प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी स्वयं ये स्वीकारते हैं कि गठबंधन धर्म के अपने दायित्व होते हैं। इसी का नाम राजनीति है एवं राजनीति में हमेशा आपके मन की नहीं होती। स्पष्ट है कि विभिन्न तरीकों से क्षेत्रीय दल अपनी सहयोगी बैसाखियों के बदले में यू. पी.ए. गठबंधन के रास्ते में रोड़े अटकाते हैं तथा अपनी शर्त मनवाते हैं।

भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के पीछे राजनीतिक अपराधीकरण का भी बड़ा योगदान रहा है। आपराधिक रिकार्ड रखने वाले लोगों द्वारा राजनीति को पेशा बनाए जाने के कारण यह कहा जाने लगा है कि जिस व्यक्ति को जेल में होना चाहिए वह राजनीति में मिलेगा। भ्रष्टाचार एवं अन्य अपराधों के ज्ञात रिकार्डों के रहते राजनीतिक पार्टियां

जिस आसानी से ऐसे लोगों को चुनाव लड़ने के लिए अपना उम्मीदवार बना लेती हैं, वह आंशिक रूप से जनता के उस निम्न आत्मगौरव की ही व्याख्या करता है, जो भारत में राजनीतिज्ञों को लेकर जुड़ी रही है। वर्ष 2004 में लोकसभा चुनावों के लिए लोकतांत्रिक सुधार संगठन (ए.डी.आर.) द्वारा संकलित आंकड़े दर्शाते हैं कि जिन 3182 प्रत्याशियों का सर्वेक्षण किया गया, उनमें सभी राजनीतिक पार्टियों के कम से कम 518 सदस्य ऐसे थे जिनका आपराधिक रिकार्ड था।[7] इन 518 उम्मीदवारों में से 115 लोकसभा के लिए चुन लिए गए।

राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण है चुनाव लड़ने की लागत का अधिक होना।[8] गठबंधन राजनीति के युग में अब पूर्व की तुलना में कहीं अधिक बार चुनाव होने लगे हैं, अतः राजनेता प्रायः वर्ष के अधिकांश समय चुनाव तैयारियों में ही लगे रहते हैं। निर्वाचन आयोग द्वारा भले ही सिद्धान्त में प्रत्याशियों द्वारा व्यय की जाने वाली अधिकतम सीमा तय कर दी गई हो परन्तु व्यवहार में चुनाव खर्च का वास्तविक व्यय कहीं ज्यादा होता है। सेंटर फॉर द स्टडीज एण्ड डेवलपिंग सोसाइटीज (सीएसडीएस) नई दिल्ली द्वारा वर्ष 1999 के लिए किया गया 'राष्ट्रीय चुनाव लेखा परीक्षण' दर्शाता है कि उस वर्ष आयोग द्वारा स्वीकृत अधिकतम चुनावी व्यय राशि 15 लाख थी, जबकि वास्तविक खर्च उससे 6 गुना अधिक औसतन 85 लाख प्रति विजयी प्रत्याशी था। 2004 के राष्ट्रीय चुनाव में भी विजयी प्रत्याशी द्वारा किया गया वास्तविक खर्च उस वक्त के संशोधित अधिकतम व्यय सीमा से कहीं ज्यादा ही था। यहां यह उल्लेखनीय है कि वैधानिक रूप से निर्धारित सीमाओं वाले खर्च का प्रस्तुत किए जाने वाले ब्योरा भी संदिग्ध है। वास्तविक व्यय इन सीमाओं को हर हाल में आसानी से पार कर जाता है। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 77(1) की पहली व्याख्या–1 राजनीतिक पार्टियों एवं उनके समर्थकों के लिए लागू होने वाली व्यय सीमा से परे कितनी भी राशि खर्च करने की अनुमति प्रदान करता है– शर्त यह है कि इसका उम्मीदवार के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध न हो।[9] कानून की यह कमजोर व्यवस्था किसी भी उम्मीदवार को यह अनुमति प्रदान करता है कि पार्टी के जरिए या किसी अन्य व्यक्ति के जरिए वह अप्रत्यक्ष रूप से जितना चाहे, उतना खर्च कर सकता है। इस तरह चुनावी खर्च के लिए व्यापक तौर पर फण्ड जुटाने की आवश्यकता ने देशभर में राजनीतिक भ्रष्टाचार को व्यापक रूप से स्वीकृति दिलवा दी है।

हाल के वर्षों में हुए बड़े घोटाले इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि राजनीतिक भ्रष्टाचार के तार सरकारी महकमों के विभागीय संस्थागत भ्रष्टाचार से जुड़े हुए हैं। अफसरों के साथ सांठगांठ कर नेता घोटालों को अंजाम देते हैं। मौजूदा सीवीसी कानून के दायरे में सिर्फ सरकारी कर्मचारी आते हैं न कि राजनेता। जब तक हम एक साथ इन दोनों की सांठगांठ का पर्दाफाश करने वाला कानून नहीं लाएंगे तब तक भ्रष्टाचार पर रोक लगाना मुश्किल है। केन्द्र के संयुक्त सचिव से ऊपर के अधिकारियों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए सीवीसी को सरकार से अनुमति लेनी पड़ती है। सीवीसी की भूमिका सिर्फ परामर्शदाता की है तथा इसकी नियुक्ति हमेशा सत्ताधारी पार्टी

के नियंत्रण में होती है। सितंबर 2010 में पूर्व टेलीकॉम सचिव पी.जे.थामस को सीवीसी नियुक्त करने पर यूपीए सरकार विवादों में घिर गई थी क्योंकि थामस पर पामोलीन तेल घोटाले एवं टूजी स्पेक्ट्रम घोटाले में लिप्त होने का आरोप था। मजबूरन न्यायपालिका के हस्तक्षेप के बाद सरकार को थामस की नियुक्ति रद्द करनी पड़ी।

पिछले कुछ दशकों में इन्कम टैक्स, सेल्स टैक्स, एमसीडी, एक्साइज विभाग आदि में भ्रष्टाचार इस कदर फैल गया है कि सुप्रीम कोर्ट की बेंच के न्यायाधीश मार्कंडे काटजू एवं टी.एस. ठक्कर ने यह तल्ख टिप्पणी तक कर दी कि 'आखिर सरकार भ्रष्टाचार को कानूनी रूप क्यों नहीं दे देती?, क्यों न हर केस को निपटाने के लिए रिश्वत तय कर दी जाए?, आम आदमी सौदेबाजी करने के बजाए चुपचाप सरकारी अफसरों को तय राशि दे दे'। वस्तुतः हैरानी की बात है कि सरकारी महकमों में फैले विभागीय भ्रष्टाचार की जांच प्रायः उस अफसर को दे दी जाती है जिसका खुद का दामन पाक नहीं होता।

इतना ही नहीं भारत में भ्रष्टाचारियों की पोल खोलने वाले (विसलब्लोअर) की सुरक्षा प्रायः खतरे में ही रहती है। उदाहरण– 2003 बिहार में स्वर्णिम चतुर्भुज योजना से जुड़े भ्रष्टाचारियों का पर्दाफाश करने वाले इंजीनियर सत्येन्द्र दुबे की हत्या कर दी गई। इसी तरह उत्तरप्रदेश के लखीमपुर खीरी में पेट्रोल पम्प की अनियमितताओं की जांच कर रहे इंडियन ऑयल के अधिकारी मंजूनाथ की माफियाओं ने हत्या कर दी थी। हाल के वर्षों में कुछ आरटीआई कार्यकताओं की भी हत्या के मामले उजागर हुए हैं। विधायिका एवं कार्यपालिका के साथ–साथ न्यायपालिका में भी भ्रष्टाचार के अनेक मामले उजागर हुए हैं। कर्नाटक हाईकोर्ट के जस्टिस दिनाकरण एवं कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस सौमित्र सेन के खिलाफ तो महाभियोग की प्रक्रिया तक शुरु करनी पड़ी।[10]

स्पष्ट है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में लंबवत एवं क्षैतिज रूप से फैले भ्रष्टाचार को यदि समाप्त करना है तो हमें बहुआयामी रणनीति अपनानी होगी। सर्वप्रथम हमारी शासन व्यवस्था के चारो स्तंभों–विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं खबरपालिका के बड़े से छोटे सभी सदस्यों की चल–अचल सम्पत्ति का वार्षिक वित्तीय ब्योरा सार्वजनिक किया जाना चाहिए। जिस प्रकार टैक्स चुराने वाले व्यापारियों पर छापे डाले जाते हैं, उसी तरह सहजतापूर्वक भ्रष्ट नेताओं एवं अफसरों पर भी छापे डाले जाने चाहिए। चुनाव खर्च एवं चुनाव अभियान अवधि को घटाकर राजनीति का शुद्धिकरण किया जा सकता है। वस्तुतः अब यहां तक आवश्यक हो गया है कि निष्पक्ष एवं समतापरक नीति के द्वारा चुनाव खर्च स्वयं सरकार वहन करे। आपराधिक रिकार्ड रखने वालों को चुनाव लड़ने से रोका जाए। सीवीसी, सीबीआई एवं लोकपाल को न्यायपालिका की तरह लगभग स्वायत्त बना दिया जाए। विसलब्लोअर की सुरक्षा हेतु सख्त कानून संसद द्वारा पारित किया जाना चाहिए। जहां तक बात गठबंधन की राजनीति की है तो बिहार में मौजूदा

नितीशकुमार की सरकार ने विगत पांच वर्षों में दिखा दिया है कि ईमानदार छवि से विकास रणनीति बनाएं तो गठबंधन राजनीति भी साफ–सुधरे ढंग से चलाई जा सकती है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भ्रष्टाचार का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव गरीब जनता पर पड़ता है। यदि घोटाले एवं काले धन के रूप में जमा रकम को जब्त कर गरीब बच्चों की स्कूली शिक्षा, मुफ्त भोजन, किताब, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा पर खर्च किए जायें तो हम भारत को जल्द ही विकसित देश की श्रेणी में पहुंचा सकते हैं। अतः यदि नेताओं को चुनने वाली जनता अपने आंख, कान को खुले रखें तो इस सियासी प्रदूषण को कम किया जा सकता है। जनता को यह स्वयं संकल्प लेना होगा कि वे अपना कोई भी काम करवाने के लिए रिश्वत कभी नहीं देंगे, थोड़ी परेशानी सहेंगे, थोड़ा नुकसान भरेंगे, थोड़ी लड़ाई लड़ेंगे लेकिन भ्रष्टाचार के आगे घुटने नहीं टेकेंगे।

संदर्भ सूची

1. लार्ड एक्टन, लेटर टू मेंडेल क्रेघटन, 5 अप्रैल 1887, लंदन, यू.के.।
2. एस. गुहा एवं एस. पॉल (1997), करप्शन इन इण्डिया : एजेंडा फॉर एक्शन, दिल्ली, विजय बुक्स।
3. क्रानिकल, दिसंबर 2010, पेज नं. 14.
4. बी. चंद्रा (2004), द कॉलोनियल लीगेसी, बी. जालान की द इंडियन इकोनामी : प्राब्लम एण्ड प्रासपेक्टस, नई दिल्ली, पेंगुइन।
5. 'हिन्दुस्तान' समाचार पत्र, कानपुर संस्करण, 03 फरवरी 2012, पृष्ठ 1.
6. 'हिन्दुस्तान' समाचार पत्र, कानपुर संस्करण, 11 फरवरी 2011, पृष्ठ 11.
7. एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (2006), प्रोसीडिंग्स ऑफ द थर्ड नेशनल वर्कशॉप ऑन इलेक्टोरल एण्ड पॉलिटिकल पार्टी रिफॉर्म्स, 11–12 फरवरी 2006, पटना, बिहार, पृष्ठ 5.
8. बिमल जालान, 'भारत की राजनीति' प्रथम संस्करण, 2007, पेज नं. 94.
9. वी. के. चाँद 2006, री इन्वेंटिंग पब्लिक सर्विस डिलीवरी इन इंडिया : सेलेक्टेड केस स्टडीज, द वर्ल्ड बैंक एण्ड सेज पब्लिकेशंस।
10. 'द हिन्दू' 22 मार्च 2011, पृष्ठ 8.